

सू० अ०—कतिपय (आचार्य) इन (नासिक्यों) को यम (कहते हैं) ।
 त्रि०—तान् नासिक्यान् एके शाखिनः 'यमान्' ब्रुवते । उक्तान्येवोदा-
 हरणानि ॥१३॥

त्रि० अ०—(तान् =) उन नासिक्यों को, (एके =) कतिपय शाखा वाले आचार्य,
 (यमान् =) यम, कहते हैं । पूर्ववर्ती सूत्र में कहे गये उदाहरण ही (इसके भी उदाहरण
 हैं) ॥१३॥

हकारान्नणमपरान्नासिक्यम् ॥१४॥

सू० अ०—हकार से बाद में नकार, णकार और मकार होने पर (दोनों के मध्य में
 हकार की प्रकृति वाले नासिक्य का आगम होता है) ।

त्रि०—हकारात् इति कर्मणि ल्यब्लोपे पञ्चमी । तस्मात् नणमपरं
 हकारमारुह्य नासिक्यं भवति । सानुनासिक्यो हकारः स्यादित्यर्थः । “अह्नां
 केतुः” (सं० २.४.१४) । “अपराह्णे” (सं० २.१.२) । “ब्रह्मवादिनः”
 (सं० १.७.१) ॥१४॥

त्रि० अ०—हकारात् इसमें कर्म में ल्यप् का लोप होने से पञ्चमी विभक्ति हुई है ।
 (हकारात् =) उस हकार से बाद में, (नणमपरात् =) न, ण और म होने पर, (नासिक्यम् =)
 नासिक्य हकार पर चढ़ जाता है । हकार सानुनासिक हो जाता है—यह अर्थ है । जैसे—
 “अह्नां केतुः” । “अपराह्णे” । “ब्रह्मवादिनः” ॥१४॥

(स्वरभक्तिविधानम्)

रेफोष्मसंयोगे रेफस्स्वरभक्तिः ॥१५॥

से प्रभावित नासिक्य ध्वनि धूँ का आगम होता है ।

- (१) कल्माषी—इस प्रत्युदाहरण में पञ्चमस्पर्श मकार से पूर्व में स्पर्श नहीं प्रत्युत
 अन्तःस्थ लकार है, अतः मध्य में नासिक्य ध्वनि का आगम नहीं होता ।
- (२) सुम्नाय और सुम्निनी—इस प्रत्युदाहरण में पञ्चमस्पर्श के पूर्व में अपञ्चमस्पर्श नहीं,
 प्रत्युत पञ्चमस्पर्श है, अतः मध्य में नासिक्य ध्वनि का आगम नहीं होता ।
- (३) सब्द में तृतीय स्पर्श बकार से बाद में पञ्चमस्पर्श नहीं प्रत्युत तृतीय स्पर्श दकार
 है अतः मध्य में नासिक्य ध्वनि का आगम नहीं होता ।
- (४) द्रष्टव्य—(१) पूर्ववर्ती सूत्र की टिप्पणी गम के लिए ।

सू० अ०—रेफ और ऊष्म (वर्ण) का संयोग होने पर रेफ (स्वरूप वाली) स्वरभक्ति (होती है) ।

त्रि०—रेफस्योष्मणश्च संयोगे सति तत्रोष्मसंयुक्तो रेफस्स्वरभक्तिः इति जानीयात् । स्वरभक्तिरिति कीदृशी? स्वरस्य भक्तिः, स्वरभक्तिः । भक्तिः भागः अवयवः एकदेश इति यावत् । योऽस्य रेफस्य समानकरणः स्वरः तद्भक्तिः स्यात् । ऋकारश्चास्य जिह्वाग्रकरणत्वेन श्रुत्या च समानधर्मः । एतदुक्तं भवति—ऋकारस्यावयवो भवतीत्यर्थः (भवतीति) । सूत्रेणानेन स्वरभक्तिरेव विहिता । स्वरभक्तिस्वरूपं तु विस्पष्टं व्याचष्टे वररुचिः—‘ऋकारादिरणुमात्रा, रेफोऽर्धमात्रा मध्ये, शेषा स्वरभक्तिरणुमात्रा’ इति । अस्यायमर्थः—

इन्द्रियाविषयो योऽसावणुरित्युच्यते बुधैः ।

चतुर्भिरणुभिर्मात्रापरिमाणमिति स्मृतम् ॥

मात्रिकस्य ऋकारस्यादिरणुमात्रः स्वरभागः, मध्ये रेफ अर्धमात्रः, अन्तेऽप्यणुमात्रः स्वरभागः । एतत् ऋकारस्वरूपम् । अत्र ऋकारमध्यवर्तिनि रेफेऽर्धमात्रे विभज्यमाने सति तौ भागौ पूर्वोत्तराणुसहितौ प्रत्येकं स्वरभक्तिनामधेयं भजेते । सा च स्वरभक्तिरर्धमात्रा । कुत्र का स्वरभक्तिरित्याशङ्क्य शिक्षाकारैरुक्तम्—

शषसेषु स्वरोदयां हकारे व्यञ्जनोदयाम् ।

शषसेषु तु विवृतां हकारे संवृतां विदुः ॥ इति ।

“यो वै श्रद्धाम्” (सं० १.६.८) इत्यादौ सूत्रोक्तक्रमाभावात् न स्वरभक्तिः । स्वरभक्त्यन्तरमपि शिक्षायामुक्तम्—

करेणुः कर्विणी चैव हरिणी हारितेति च ।

हंसपदेति विज्ञेया पञ्चैताः स्वरभक्तयः ॥

कीदृश्य एता इति चेत्—

करेणू रहयोयोगे कर्विणी लहकारयोः ।

हरिणी रशसानां च हारिता लशकारयोः ॥

या तु हंसपदा नाम सा तु रेफषकारयोः ।

एवं पञ्चविधां भक्तिमुच्चरेत्स्वर्गकामुकः ॥

यथाकरणुः—“बर्हि” (सं० १.१.२) । कर्विणी—“मल्हाः” (सं० २.१.२) । हरिणी—“दर्शपूर्णमासौ” (सं० २.२.५) । हारिता—“सहस्र-वल्शाः” (सं० ६.३.३) । हंसपदा—“वर्षाभ्यः” (सं० ७.२.१०) इत्यादि ॥ १५ ॥

त्रि० अ० — (रेफोष्मसंयोगे =) रेफ और ऊष्मवर्ण का संयोग होने पर, (रेफस्वरभक्तिः =) रेफ स्वरभक्ति, (होती है) — यह जानना चाहिए । कैसी स्वरभक्ति? (इसे बतलाते हैं—) स्वर की भक्ति = स्वरभक्ति । भक्ति का अर्थ है—भाग, अङ्ग (अवयव), एक अंश । जो इस रेफ के समान करण वाला स्वर है, उसका भाग (स्वरभक्ति होती है) । ऋकार का और इस (रेफ) का जिह्वाग्र करण से श्रुतिगोचर होने के कारण समान धर्म है । यही कही गयी (= स्वरभक्ति) होती है—(स्वरभक्ति) ऋकार का अंश होती है—यह अर्थ है । इस सूत्र के द्वारा स्वरभक्ति ही का विधान किया गया है । स्वरभक्ति के स्वरूप की वररुचि ने स्पष्ट रूप से व्याख्या किया है—“ऋकार के मध्य में अर्ध मात्रा रेफ तथा आदि में अर्ध मात्रा और शेष (= अन्त में) अणुमात्रा स्वर का भाग होता है । इसका यह अर्थ है—“इन्द्रिय का अविषय जो यह ‘अणु’ आचार्यों द्वारा कहा गया है, वह चार अणुओं के बराबर एक मात्रा का परिणाम (होता है, यह) कहा गया है” ।

एक मात्रा काल वाले ऋकार का आदि अणुमात्रिक स्वर का भाग, मध्य में अर्ध मात्रा वाला रेफ और अन्त में भी अणुमात्रिक स्वर का अंश होता है । यह ऋकार का स्वरूप है । इसमें ऋकार के मध्य-भाग में स्थित रेफ के अर्ध मात्रा में विभाजित करने पर दोनों भाग पूर्ववर्ती और परवर्ती के साथ प्रत्येक स्वरभक्ति के नाम को प्राप्त करते हैं । वह स्वरभक्ति अर्धमात्रा काल वाली होती है? । कहाँ वह स्वरभक्ति होती है इसे शिक्षा-कारों द्वारा बतलाया गया है—

“स्वर है बाद में जिसके ऐसे शकार, षकार और सकार बाद में होने पर और व्यञ्जन है बाद में जिसके ऐसा हकार बाद में होने पर रेफ स्वरभक्ति को प्राप्त करता है । (वह स्वरभक्ति) शकार, षकार और सकार बाद में होने पर विवृत और हकार बाद में होने पर संवृत होती है” ।

‘यो वै श्रद्धाम्’ में सूत्र में कहे गये क्रम (अर्थात् पूर्व में रेफ और बाद में ऊष्म)

- (१) तात्पर्य यह है कि अणु मात्राकाल इतना अल्प होता है कि इन्द्रियग्राह्य नहीं हो पाता । अणुमात्रा एक मात्रा का चतुर्थांश होता है । इस प्रकार चार अणुकाल एकमात्रा काल के बराबर होता है ।
- (२) ऋकार में आदि में अणुमात्रिक स्वरभाग पुनः बीच में $\frac{1}{2}$ मात्रिक रेफ और अन्त में अणुमात्रिक स्वर होता है । इस प्रकार ऋ = $\frac{1}{4}$ मात्रिक स्वर का भाग + $\frac{1}{2}$ रेफ + $\frac{1}{4}$ मात्रिक स्वरभाग । इस ऋकार का आधा कर देने पर $\frac{1}{4}$ मात्रिक स्वरभाग तथा $\frac{1}{4}$ मात्रिक रेफ प्रथम भाग में और द्वितीय भाग में $\frac{1}{4}$ मात्रिक रेफ + $\frac{1}{4}$ मात्रिक स्वर होता है । इनमें से प्रत्येक भाग ‘ऋ’ का अंश है । जो स्वरभक्ति है । इस प्रकार स्वरभक्ति अर्धमात्रिक होती है ।

का अभाव (= व्यतिक्रम) होने के कारण स्वरभक्ति नहीं होती । स्वरभक्ति-विषयक अन्य (विधान) भी शिक्षा में कहा गया है—

“करेणु, कर्विणी, हरिणी, हारिता और हंसपदा—ये पाँच स्वरभक्तियाँ जानना चाहिए” । ये किस प्रकार की होती है (—इस विषय में कहते हैं)—

“रेफ और हकार के संयोग में करेणु, लकार और हकार के संयोग में कर्विणी, रेफ और शकार अथवा सकार के संयोग में हरिणी, लकार और शकार के संयोग में हारिता होती है । जो हंसपदा नामक स्वरभक्ति होती है । वह रेफ और षकार के संयोग में होती है । इस प्रकार स्वर्ग की कामना करने वाले को इन पाँच स्वरभक्तियों का उच्चारण करना चाहिए” । जैसे—करेणु—“बर्हिः” । कर्विणी—“मल्हा” । हरिणी—“दर्शपूर्णमासौ” । हारिता—“सहस्रवल्शा” । हंसपदा—“वर्षाभ्यः” इत्यादि ॥१५॥

न क्रमे प्रथमपरे ॥१६॥

सू० अ० — परवर्ती ऊष्म का द्वित्व होने पर (अथवा उस ऊष्म से) बाद में प्रथम (स्पर्श) होने पर (स्वरभक्ति) नहीं (होती है) ।

त्रि० — क्रमशब्दो द्वित्वपर्यायः । कथमेतत्? “प्रकृतिर्विक्रमः क्रमः” (२४.५) इत्यत्र द्वित्वस्यैव क्रमशब्देनाभिधानात् । अत्रापि स एवार्थ इति निश्चिनुमः । ऊष्मणः क्रमे सति तस्मिन्नुष्मणि प्रथमपरे वा सति न स्वरभक्तिर्भवति । क्रमे यथा—“दार्शयम्” (सं० ३.२.२), “वर्षाभ्यः” (सं० ७.४.१३), “बर्स्स्वेभिः” (सं० ५.७.११), “एतर्ह्यारूढः” (सं० ५.१.५) । प्रथमपरे यथा—“अदार्शयम् ज्योतिः” (सं० ३.२.५) । “कार्ष्णी उपानहौ” (सं० ५.४.४) । “वर्षा पर्जन्यः” (सं० ७.५.२०) प्रथम परो यस्मादसौ प्रथमपरः ॥१६॥

॥ इति त्रिभाष्यरत्ने प्रातिशाख्यविवरणे एकविंशोऽध्यायः ॥

त्रि० अ० — क्रम शब्द द्वित्व का पर्याय है । (प्रश्न)—कैसे? (उत्तर)—“वेदाध्ये को..... प्रकृति, विक्रम और क्रम..... को जानना चाहिए” । यह क्रम शब्द से द्वित्व व

(१) स्वरभक्ति पाँच प्रकार की होती है—करेणु, कर्विणी, हरिणी, हारिता और हंस-पदा रेफ और हकार के संयोग के स्थल पर होने वाली स्वरभक्ति करेणु कहलाती है । जैसे—“बर्हिः” । लकार और हकार के स्थलपर कर्विणी कहलाती है । जैसे—“मल्हा” । रेफ तथा शकार अथवा सकार के संयोग में हरिणी कहलाती है । जैसे—“दर्शपूर्णमासौ” । लकार और शकार के संयोग में हारिता होती है । जैसे—“सहस्रवल्शा” । रेफ और षकार के संयोग होने वाली स्वरभक्ति हंसपदा कहलाती है, जैसे—वर्षाभ्यः ।